ओ३म्

श्री सायणाचार्य के वेदभाष्यों की कुछ भयंकर भूलों का दिग्दर्शन

(केन्द्रीय सूचना प्रसारण मन्त्री श्री लालकृष्णजी अडवानी को २६ अगस्त १९७७ को प्रदत्त विज्ञप्ति की प्रति विद्वानों से निवेदन सहित)

लेखक

ब्रह्मनिष्ठ स्वामी धर्मानन्द सरस्वती

अध्यक्ष – विश्ववेद परिषद्

आनन्द कुटीर, ज्वालापुर (सहारनपुर)

(प्रथम संस्करण)
(२००० प्रतियां)

अक्टूबर १९७७

मूल्य २५ पैसे

विश्ववेद परिषद् का भ्रान्ति निवारक

मण्डल

१. ब्रह्मनिष्ठ स्वामी धर्मानन्द जी विद्यामार्तण्ड
अध्यक्ष विश्ववेद परिषद्, आनन्द कुटीर, ज्वालापुर।

२. आचार्य वीरेन्द्र जी शास्त्री, एम.ए., मन्त्री विश्ववेद परिषद्
सी ८१७ महानगर लखनऊ ६।

३. स्वामी जगदीश्वरानन्द जी एम. ए., उपाध्यक्ष-विश्ववेद प०
मौडल टाउन देहली—९।

४. शास्त्रार्थ महारथी पं० बिहारीलाल जी शास्त्री
उपाध्यक्ष-विश्ववेद परिषद्, बरेली।

५ शास्त्रार्थ महारथी श्री अमरस्वामी जी परिव्राजक, संन्यास
आश्रम, गाजियाबाद, अध्यक्ष-उत्तर प्रदेशीय वि. वेद परिषद्

६. डा. भवानीलाल जी भारतीय एम. ए., पी एच. डी.
संयुक्त मन्त्री-परोपकारिणी सभा, अजमेर।

७. डा. शिवपूजनसिंह जी सिद्धान्तशास्त्री एम. ए., कानपुर।

प्रकाशक - आचार्य वीरेन्द्र जी शास्त्री, एम. ए., मन्त्री-वि. वे. प.
सी ८१७ महानगर, लखनऊ।

मुद्रक— रघुवीरसिंह, गोल्डन टैम्पल प्रेस, पहाड़ी बाजार, कनखल

ओ३म्

श्री सायणाचार्य के वेद भाष्यों की कुछ भयंकर भूलों का दिग्दर्शन

स्वामी धर्मानन्द सरस्वती विद्यामार्तण्ड, अध्यक्ष विश्व वेद परिषद् द्वारा केन्द्रीय सूचना और प्रसारण मंत्री श्री लालकृष्ण जी अडवानी को २६ अगस्त १९७७ को प्रदत्त विज्ञप्ति की प्रति

सेवा में -

श्री लालकृष्ण जी अडवानी
केन्द्रीय सूचना तथा प्रसारण मंत्री
नई दिल्ली

नई देहली
२६-८-७७

श्रीयुत मान्य मन्त्री जी,

यह जानकर हम सबको बड़ी प्रसन्नता हुई थी कि भारत सरकार ने आकाशवाणी से वेदों को व्याख्या सहित प्रसारित करने का निश्चय किया है, पर जब यह सुना कि यह व्याख्या श्री सायणाचार्य की होगी तो आश्चर्य और दुःख हुआ।

२. मैं इस विज्ञप्ति द्वारा विश्व वेद परिषद् के अध्यक्ष के रूप में आपका ध्यान इस विषय की ओर आकृष्ट करना अपना कर्तव्य समझता हूँ कि श्री सायणाचार्य का वेदभाष्य प्राचीन आर्ष भाष्य प्रणाली के विरुद्ध, परस्पर विरुद्ध, अनेक अश्लील आख्यायिका पूर्ण, ऋषि मुनियों और राजाओं को कलंकित करने वाली कथाओं से पूर्ण, यज्ञादि में पशु हिंसा का समर्थक, इन्द्र जैसे देवराज को बैलों और भैंसों के मांस का भक्षक बताने वाला और इस प्रकार विचारशील सुशिक्षित नर-नारियों की वेदों के प्रति अश्रद्धा पैदा करने वाला है। इसके कुछ प्रमुख उदाहरण मैं इस विज्ञप्ति में आपके अवलोकनार्थ प्रस्तुत करता हूं ताकि यह न समझा जाये कि हम लोग निष्कारण सायणाचार्य कृत वेदभाष्य के विरोधी हैं।

श्री सायणाचार्य का प्राचीन आर्ष भाष्य प्रणाली से विरोध

प्राचीन आर्ष भाष्य प्रणाली में वैदिक शब्दों को यौगिक मानकर उनकी व्याख्या की जाती है जिसका "सर्वाणिनामान्याख्या-तजानीतिनैरुक्त समयः, नाम च धातुजमाहनिरुक्त" (महाभाष्य) इत्यादि वचनों में स्पष्ट निर्देश हैं। इसके अनुसार इन्द्र, मित्र, वरुण, अग्नि, अर्यमा आदि शब्द प्रधानतया परमेश्वर वाचक और परमात्मा के अनेक गुण सूचक हैं। क्योंकि वेदों का मुख्य सिद्धान्त एकेश्वर पूजा का है किन्तु सायणाचार्य "एकं सद् विप्रा बहुधा वदन्त्यग्निं यमं मातरिश्वानमाहुः।" इस वैदिक ईश्वरवाद को भुलाकर वेदों को बहुदेवतावादी मानकर व्याख्या करते हैं। यह उनकी मौलिक भूल है।

२. वेद ज्ञानकर्म और भक्ति तीनों के समुच्चय वा समन्वय को मुक्ति का साधन बतलाते हैं किन्तु सायणाचार्य वेदों को प्रधानतया कर्म-काण्ड का ही प्रतिपादक मानते हैं और वैसी ही व्याख्या प्रस्तुत करते हैं जो संकुचित है।

सायणाचार्य का परस्पर विरोध

अपने ऋग्वेद संहिता भाष्य की भूमिका में सायणाचार्य ने वेदों की पौरुषेयता और अनित्यता, का पूर्वपक्ष रखकर मीमांसा शास्त्र के आधार पर उसका प्रबल खंडन किया है, उदाहरणार्ण उन्होंने लिखा है—

"यदप्युक्तं प्रमगन्दाद्यनित्यसंयोगान्मन्त्रस्यानादित्वं न स्यादिति तत्रोत्तरं सूत्रयति 'उक्तश्चानित्यसंयोगः' इति। तत्र पूर्वपक्षे वेदानां पौरुषेयत्वं वक्तंयुक्तं काठकं कालापकमित्यादि पुरुषसम्बन्धाभिधानं हेतुकृत्यानित्यदर्शनाच्चेति हेत्वन्तरं सूत्रितं तस्यायमर्थः बबरः प्रावाहणि-रकामयत इत्यनित्यानां बबराद्यर्थानां दर्शनात् ततः पूर्वमसत्वात् पौरुषेयो वेद इति। तस्योत्तरमेवं सूत्रितम्—'परन्तु श्रुतिसामान्यमात्रम्' इति। तस्यायमर्थो यत् काठकादिसमाख्यानं तत् प्रवचननिमित्तं, यत्तु परं बब-राद्यनित्यदर्शनं तच्छब्दासामान्यमात्रं न तु तत्रानित्यो बबराख्यः कश्चित् पुरुषो विवक्षितः किन्तु बबर इति शब्दानुकृतिः तथा सति बबर इति शब्द

कुर्वन् वायुरभिधीयते स च प्रावाहणिः—प्रकर्षेण वहनशीलः। एवमन्यआप्यूहनीयम्।" इति।

इस सन्दर्भ का भावार्थ यह है कि पूर्वपक्ष के अनुसार वेद पुरुषकृत और अतएव अनित्य हैं। काठकम् कालापकम् इत्यादि जो नाम वेद शाखाओं के प्रचलित हैं उनसे भी यह सूचित होता है कि कठ, कलाप, पिप्पलाद आदि तथा अन्य ऋषियों ने उन्हें बनाया।

इसी प्रकार 'बबरः प्रावाहणिरकामयत' इत्यादि जो वाक्य वेद माने जाने वाले (ब्राह्मण) ग्रन्थों में पाये जाते हैं उनसे भी स्पष्ट होता है कि प्रवाहण के पुत्र बबर ने ऐसी कामना की। इसका अर्थ यह हुआ कि बबर के होने के पश्चात् वेद भाग बना। इस पूर्व पक्ष का उत्तर—'परन्तु श्रुति सामान्यमात्रम्' इस सूत्र द्वारा दिया गया है कि वेद में व्यक्तिविशेष वाचक शब्द नहीं हैं किन्तु गुणवाचक सामान्य शब्द हैं अतः 'बबरः प्रावाहणिरकामयत' इत्यादि का तात्पर्य प्रवाहण के पुत्र बबर नामक किसी व्यक्ति विशेष से नहीं किन्तु चलने वाले वायु से है जैसा कि इसके यौगिक अर्थ से स्पष्ट है। इस सन्दर्भ से तो यह स्पष्ट है कि सायणाचार्य के अनुसार वेदों में अनित्य इतिहास का अभाव है। किन्तु इससे बढ़कर आश्चर्य क्या हो सकता है कि वही सायणाचार्य जो वेदों ही क्या ब्राह्मण ग्रंथों तक में अनित्य इतिहास का अभाव मानते हैं ऐसे दूषित, घृणित और अश्लील इतिहास परक अर्थ वेदमन्त्रों के अनेक स्थानों पर कर गये हैं जिन्हें पढ़कर अत्यधिक लज्जित होना पड़ता है। यह परस्पर विरुद्धता सायणाचार्य को अनाप्त और अप्रामाणिक सिद्ध करती हैं।

सायणभाष्य में अश्लील आख्यायिकायें

ऋ० १. १२६. ६. में आता है—

आगधिता परिगधिता या कशीकेव जंगहे।
ददाति मह्यं यादुरी याशूनां भोज्या शता॥

इसका अर्थ सायणाचार्य अपने भाष्य में इस प्रकार करते हैं—

'सम्भोगाय प्रार्थितो भावयव्यः स्वभार्यां रोमशाम् अप्रौढेति बुद्ध्या परिहसन्नाह — (भोज्या) भोगयोग्यैषा। (आगधिता) आ समन्तात् स्वीकृता तथा (परिगधिता) परिगृहीता (आगधिता) आ - समन्तान्मिश्रयन्ती आन्तरं प्रजननेन बाह्यं भुजादिभिः। कीदृशी सा या (जंगहे) अत्यन्तं गृह्णाति कदापि न विमुँचति। अत्यागे दृष्टान्तः (कशीकेव) कशीका नाम सूतवत्सा नकुली सा यथा पत्यासह चिरकालं क्रीडति न कदाचिदपि विमुंचति तथैवैषापि। किं च भोज्यैषा यादुरित्युदकनाम रेतोलक्षणम् उदकं प्रभूतंराति — ददातीति यादुरीबहुरेतायुक्तेत्यर्थः। तादृशीसती (याशूनान्) सम्भोगानां यश इति प्रजनननाम तत्सम्बन्धीनिकर्माणि याशूनि भोगाः तेषां (शतम्) असंख्यातानि मह्यं ददाति।'

अत्यन्त अश्लील और जुगुप्सा जनक होने के कारण इसका भाषानुवाद देना भी हमें रुचिकर नहीं प्रतीत होता तथापि संक्षेप से इतना लिख देना पर्याप्त है कि श्री सायणाचार्य के अनुसार भावयव्य नामक ऋषि अपनी पत्नी रोमशा को अप्रौढा जानकर जब उसने संभोग की प्रार्थना की तो उसका उपहास करते हुये इस मन्त्र द्वारा कहते हैं कि यह तो बड़ी भोगयोग्य है जो अन्दर और बाहर से मेरा आलिङ्गन कर रही है सूतवत्सा नकुली की तरह मेरा कभी परित्याग नहीं करती। इसमें बड़ा वीर्य है और यह सैकड़ों प्रकार से मुझे संभोग सुख देती है इत्यादि वस्तुतः मंत्र में संभोगार्थ रोमशा की प्रार्थना, अप्रौढ़ा (छोटी आयु की) समझकर उसका भावयव्य द्वारा परिहास सूचक एक भी शब्द वेदमन्त्र में नहीं। इसलिये महर्षि दयानन्द सरस्वती ने इस मन्त्र की उत्तम नीतिपरक व्याख्या की है। यादुरी का अर्थ प्रयत्नशील और याशूनाम् का प्रयतमानानाम् ऐसा करते हुये मन्त्र का भावार्थ इन शब्दों में दिया है—

यया नीत्याऽसंख्यातानि सुखानिस्युः सा सर्वैः सम्पादनीया। अर्थात् जिस नीति से असंख्य सुखहों उसका सबको अनुष्ठान करना

चाहिये। विचारशील लोग इन दोनों अर्थों की निष्पक्ष भाव से तुलना करके स्वयं निर्णय करें कि वेद के सर्वसम्मत स्वरूप की दृष्टि से कौन सा अधिक संगत है साथ ही किस अर्थ में कपोल कल्पना और खेंचातानी अधिक है। इसी सूक्त का अगला मन्त्र यह है—

उपोप मे परामृश मा मे दभ्राणि मन्यथा।
सर्वाहमस्मि रोमशा गन्धारीणामिवाविका॥ ऋ.१.१२६.७।

इसका सायणाचार्य ने यों भाष्य किया है—

रोमशा नाम बृहस्पतेः पुत्री ब्रह्मवादिनी परिहसन्तं स्वपतिं प्राहु भोः पते (मे) मां द्वितीयार्थेचतुर्थी (उपोप) उपेत्य (परामृश) सम्यक्-स्पृश भोगयोग्याम् अवगच्छेत्यर्थः। यद्वा (मे)ममगोपनीयङ्गम् (उपोपमृश) अत्यन्तमान्तरं स्पृश परामर्शाभावशङ्कां निवारयति (मे) मदङ्गानि रोमाणि (दभ्राणि) अल्पानि मा बुध्यस्व। (अहम) (रोमशा) बहुरोम-युक्तास्मि यतोऽहमीदृशी अतः (सर्वा) सम्पूर्णावयवास्मि रोमशत्वे-दृष्टान्तः - गन्धारदेशीयमेषा इव यद्वा (गन्धारिणीम्) गर्भधारिणीनां स्त्रीणां (अविका) अत्यन्तं तर्पयन्ती योनिरिवास्मि यतो हमीदृशो अतो माम् अप्रौढांमावबुध्यस्वेति अत्यन्त अश्लील होने के कारण इसका भी भाषानुवाद देते हुये हमें लज्जा आती है तथापि अपने भाव को स्पष्ट करने के लिये संक्षेप से उसका तात्पर्य बता देना आवश्यक प्रतीत होता है। सायणभाष्य के अनुसार बृहस्पति की पुत्री ब्रह्मवादिनी रोमशा परिहास करते हुए अपने पति का कहती है कि हे पते आप मुझे स्पर्श करें और भोग के योग्य समझें। अथवा मेरे गुप्तांग का आप अच्छी तरह अन्दर से स्पर्श करें। आप मेरे अंगों और रोमों को छोटा न समझें। मैं बहुत रोमों से युक्ता और इसलिये सम्पूर्ण अवयवसम्पन्ना हूँ जैसे कि गान्धारदेश को भेड़ होती है अथवा जैसे गर्भवती स्त्रियों की बहुत तृप्ति करने वाली योनि होती है।

वस्तुतः सायणाचार्यकृत यह अर्थ न केवल अत्यन्त अश्लील, निर्लज्जता की पराकाष्ठा का सूचक है, अपितु सर्वथा अशुद्ध है। महर्षि

दयानन्द सरस्वती ने इसका वास्तविक अर्थ इन शब्दों में दिया है—

पुनाराज्ञी किं कुर्यादित्याह –

हे पते राजन् याऽहं (गन्धारीणाम् इव अविका) पृथिवीराज्यधर्त्रींणाम् मध्ये रक्षिका (रोमशा) प्रशस्त लोमा (अस्मि) तस्या मे गुणान् (परामृश)विचार्य मे (दभ्राणि) अल्पानि कर्माणि (मा) (उपोप) अतीसमीपत्वे (मन्यथाः) जानीयाः।

भावार्थः राज्ञी राजानं प्रतिब्रूयात् अहं भवतो न्यूना नास्मि। यथा भवान् पुरुषाणां न्यायाधीशोऽस्ति तथाहं स्त्रीणा न्यायकारिणी भवामि।

अर्थात् रानी राजा से कहती है कि आप भी मेरे गुणों का विचार करें और मुझे कभी तुच्छ न समझें और न मेरे कामों को तिरस्कार की दृष्टि से देखें। मैं आपसे कम नहीं हूँ। जैसे आप पुरुषों के लिये न्यायकारी हैं वैसे मैं भी स्त्रियों के लिये न्यायकारिणी होती हूँ। मैं सदा स्त्रियों का न्याय करने में तत्पर रहूँ।

ग्रिफिथ ने सायण भाष्य को प्रामाणिक मानकर और उस के अश्लील अर्थ को देख कर इन दोनों मन्त्रों का अंग्रेजी में अनुवाद ही छोड़ दिया और लैटिन में अनुवाद किया जिससे अधिक लोग उसे समझ ही न सकें।

देवराज इन्द्र का वृषभमहिषभास भक्षण सायणभाष्य में—

उक्ष्णो हि मे पचदश साकं पचन्ति विंशतिम्।
उताहमस्मि पीव इदुभा कुक्षी पृणन्ति मे विश्वस्मादिन्द्र उत्तरः॥
ऋ० १०. ८६. १४।

इस मन्त्र का सायणाचार्य ने यह अनुवाद संस्कृत में किया है कि-

अथेन्द्रोब्रवीति। (मे) मदर्थं (पंचदश) पंचदश संख्याकान् (विंशति) विंशतिसंख्याकांश्च (उक्षणः) वृषभान् (साकम्) सह ममभार्य्य-यन्द्राण्या प्रेरिता यष्टारः (पचन्ति) (उत) अपि च (अहम्) अद्मि। तान् भक्षयामि ज ध्वाचाहं (पीवः इत्) स्थूल एव भवामीति शेषः। किं

च (मे) मम (उभो) उभे कुक्षी (पृणन्ति) सोमेन पूरयन्ति यष्टारः। सो हम् इन्द्रः सर्वस्मादुत्तरः॥

— ऋग्वेद संहिता सायणभाष्यम् खण्ड—४, तिलकवेदसंस्थान पुणे, पृ—५६२।

इसका तात्पर्य यह है कि याजक लोग मेरी पत्नी इन्द्राणी से प्रेरित होकर मेरे लिये १५,२० वैलों को पकाते हैं और मैं उनको खाकर अवश्य मोटा होता हूं। वे याजक मेरी दोनों कुक्षियों को सोम से भर देते हैं। मैं सबसे श्रेष्ठ हूं। वस्तुतः यहां उक्षा शव्द सोमवाचक है जिसका १५, २० पत्तियों को पकाकर खाना पुष्टिदायक बताया गया है। स्वयं श्री सायणाचार्य ने ऋ० १. १६४. ४३ के भाष्य में उसका सोमपरक अर्थ किया है।

सखा सख्ये अपचत् सूर्यमग्निरस्य क्रत्वा महिषा त्रीणिशतानि त्रीसाकमिन्द्रो मनुषः सरांसि सुतेनापिबद् वृत्ररुत्याय सोयम्।

ऋ० ५. २६ ७।

इस ऋग्वेद के मन्त्र का भाष्य करते हुये श्री सायणाचार्य लिखते हैं—

(सखा) इन्द्रस्य मित्रभूतः (अग्निः) (महिषा) महिषाणां पशूनां (त्री) त्रीणि (शतानि) शतसंख्यकानि (सख्ये) सख्युर्मित्रभूतस्य (अस्य) इन्द्रस्य (क्रत्वा) कर्मणानिमित्तभूतेत (तूयम्) क्षिप्रम् (अपचत्) पपाच किं च (इन्द्रः) परमैश्वर्ययुक्तः (मनुष्यः) मनोः सम्वन्धीनि (त्री) त्रीणि (सरांसि) पात्राणि अत्रसरःशब्देन पूतभृद ध्वनीय द्रोण कलशसंज्ञानि पात्राण्युच्यन्ते। तेषुस्थितं (सुतम्) अभिषुतः (साकम्) युगपदेव (वृत्रहत्याय) वृत्रहननाय (पिबत्) अपिबत् पपौ।

—सायणाचार्य भाष्यम् पृ० ७६७।

इस संस्कृत भाष्य का तात्पर्य यह है कि इन्द्र के मित्र अग्नि ने उसके निमित्त ३०० भैंसों को पकाया और इन्द्र ने पूतभृत्, आधवनीय और द्रोणकलश नामक सोम के पात्रों का एकदम पान कर लिया।

देवराज इन्द्र के भक्षणार्थं ३०० भैंसे पकाए जाएं – यह कल्पना ही कितनी घृणित और वस्तुतः असम्भव है पर सायणाचार्य ने मन्त्र का ऐसा ही अनर्थं किया है। इसके अगले मन्त्र का सायणाचार्यकृत अर्थ यों है—

त्री यच्छता महिषाणामदोयास्त्री सरांसि मघवा सोम्यापाः। कारं न विश्वे अह्वन्त देवा भरमिन्द्राव यदहिंजधान।

ऋ० ५. २६. ८।

हे इन्द्र त्वं (यत्) यदा (त्री) त्रयाणां [शता] शतसंख्याकानां (महिषाणां) पशूनाम् (माः) मांसानि [अधः] भक्षितवानसि घसेरत्तेर्वा-रूपम्। यदा च [मघवा] धनवांस्त्वम् (सोम्या) सोममयानि [त्री] त्रीणि [सरांसि] पात्राणि [अपाः] पीतवानसि [यत्] यदा इन्द्रः [अहिं वृत्रंजघान] हतवान् तदा [विश्वे] सर्वे देवाः सोमपानादिनापूर्णम् [इन्द्राय] इन्द्रं युद्धाय [अह्वन्त] आह्वयन्त तत्रदृष्टान्तः [कारं न] स्वामिनः कर्मकरमिव तद्वत्।।

—ऋग्वेद सायणभाष्यम् ख० ४, पृ०७८८।

सायणाचार्य के इस संस्कृत भाष्य का तात्पर्य यह है कि—

हे इन्द्र जब तू तीन सौ भैंसों के मांसों को खा चुकता है और जब धनवान् तू सोम से पूर्ण तीन पात्रों का पान कर लेता है और वृत्र का वध कर लेता है तब सब देव तुझे युद्ध के लिये ऐसे बुलाते हैं जैसे कर्म करने वाले सेवक को उसके स्वामी बुलाते हैं।

इस प्रकार सायणाचार्य के भाष्यानुसार देवराज इन्द्र ५, १०, १५, २० नहीं बल्कि ३०० भैंसों का मांस खाते हैं जबकि महर्षि दयानन्द ने इसका भावार्थ यह लिखा है कि यथा सूर्यः ऊर्ध्वाधोमध्यस्थान् पदार्थान् प्रकाशयति तथोत्तमध्यमाधमान् व्यवहारान् राजा प्रकटी कुर्यात् सर्वैः सह सुहृद् वत् वर्तेत ॥

अर्थात् जैसे सूर्य ऊपर बीच और मध्य भाग में वर्तमान स्थूल पदार्थों को प्रकाश करता है वैसे उत्तम मध्य और अधम व्यवहारों को राजा प्रकट करे और सबके साथ मित्र के सदृश व्यवहार करे।

द्वितीय मन्त्र का भावार्थ उन्होंने इन शब्दों में लिखा —

यथा पुरुषार्थिनं जनं सर्वेस्वीकुर्वन्ति तथैव सूर्यः ईश्वरीय नियम-नियतजलरसं गृह्णाति यथाजना महता पदार्थानां सकाशाच्छतशः कार्याणि साध्नुवन्ति तथैव राजा महद्भ्यः पुरुषेभ्यो महद् राजकार्यं साध्नुयात् ।।

जैसे पुरुषार्थी जन को सब स्वीकार करते हैं वैसे ही सूर्य ईश्वरीय नियमों से नियत जलरस का ग्रहण करता है। जैसे जन बड़े पदार्थों की समीपता से सैकड़ों कार्य सिद्ध करते हैं वैसे ही राजा बड़े जनों से बड़े राजकार्य सिद्ध करें।

सायणभाष्य में यज्ञों में पशु हिंसा

यजुर्वेद के षष्ठ अध्याय में ये २ मन्त्र आये हैं जिनका श्री सायणाचार्य उवट, महीधर इत्यादि ने बड़ा अनर्थ किया है —

वाचं ते शुन्धामि प्राणं ते शुन्धामि चक्षुस्ते शुन्धामि श्रोत्रं ते शुन्धामि नाभिं ते शुन्धामि मेढ्ं ते शुन्धामि पायुं ते शुन्धामि चरित्रां-स्ते शुन्धामि ।। मनस्त आप्यायतां वाक् त आप्यायतां प्राणस्त आप्या-यतां श्रोत्रं त आप्यायतां । चक्षुस्त आप्यायतां यत् ते क्रूरं यदास्थितं तत् त आप्यायताम् तन् ते शुध्यतु शमहोभ्यः ।। यजु० ६. १४. १५ ।

सायणभाष्य :—पशुसम्बन्धीनि प्राणस्थानानि मुखादिछिद्राणि पत्नीं तत्तन्मन्त्रेण शोधयति वाचं ते शुन्धामि हे पशो। (ते) तव सम्बन्धीनि वागिन्द्रियमहंशुन्धामि शुद्धं करोमि तथा त्वदीयं पंचवृत्तिकं प्राणं शुन्धामि तथा चक्षुरिन्द्रियम्। चरित्रान् चरणसाधनभूतान् पादान् एव विधानि त्वदीयानि सर्वेन्द्रियाणि शुन्धामि ।।

(काण्व संहिताभाष्ये सायणाचार्यः)

सायणभाष्यानुसार तात्पर्य यह है कि यजमान पत्नी मृत पशु के मुखादि अंगों को मन्त्र से धोती हुई कहती है कि तेरी वाणी, प्राण

आंख, कान, नाभि आदि को और पैरों को शुद्ध करती हूँ। चरित्र का स्पष्ट अर्थ आचार होता है पर सायणाचार्य तथा अन्य भाष्यकारों ने उसका अर्थ चरणसाधनभूतान् पादान् अर्थात् पैर कर दिया है।

महर्षि दयानन्द जी सरस्वती ने इसका उत्तम शिक्षा परक अर्थ करते हुये इसे आचार्य की शिष्य को उक्ति माना है कि हे शिष्य ! विविधशिक्षाभिस्तेऽहं वाचं शुन्धामि ते प्राणं शुन्धामि ते चक्षुः शुन्धामि निर्मलीकरोमि चरित्रान् व्यवहारान् ते शुन्धामि निर्मलीकरोमि।

भावार्थ में उन्होंने लिखा है कि —

"गुरुभिर्गुरु पत्नीभिश्च वेदोपवेदोपाङ्गशिक्षया देहेन्द्रियक्रियान्तःकरणात्मनः शुद्धि शरीर पुष्टि प्राणसन्तुष्टीः प्रदाय सर्वेकुमाराः सर्वाः कन्याश्च सद्गुणेषु प्रवर्तयितव्या इति ॥"

अर्थात् ये गुरुपत्नी और गुरुजन यथायोग्य शिक्षा से अपने अपने विद्यार्थियों को अच्छे अच्छे गुणों से कैसे प्रकाशित करते हैं। इस मन्त्र में उपदेश है कि हे शिष्य मैं विविध शिक्षाओं से तेरी वाणी को शुद्ध करता हूं, तेरे नेत्र को शुद्ध करता हूं, तेरे कानों को शुद्ध करता हूं.. तेरे समस्त व्यवहारों को पवित्र शुद्ध करता हूँ अर्थात् धर्म के अनुकूल करता हूँ।

भावार्थ - गुरु और गुरुपत्नियों को चाहिये कि वेद उपवेद तथा वेदाङ्गों की शिक्षा से इन्द्रिय, अन्तःकरण और मन की शुद्धि शरीर की पुष्टि तथा प्राण की सन्तुष्टि देकर समस्त कुमार और कुमारियों को अच्छे अच्छे गुणों में प्रवृत्त करावें।

अन्य भी सैकड़ों स्थानों पर सायणाचार्य ने वेद मन्त्रों का भाष्य करते हुये यज्ञों में अश्व, बकरे, बैल, भेड़ आदि पशुओं की हिंसा का अर्थ किया है जबकि वेदों में यज्ञ को सैकड़ों स्थानों पर अध्वर अर्थात हिंसा रहित (अध्वर इति यज्ञ नाम ध्वरति हिंसा कर्मातत्प्रतिबेधः — निरुक्ते १.७) कर्म बताया गया है।

श्री सायणाचार्य के भाष्य के आधार पर वेदों की व्याख्या यदि आकाशवाणी द्वारा प्रसारित की जाय तो उसका परिणाम यह होगा कि

लोगों की वेदों पर श्रद्धा हट जायेगी। काशी पण्डित सभा के प्रधान पं० गोपालदत्त जी शास्त्री दर्शनकेसरी ने वेदवाणी वाराणसी के द्वितीय वेद विशेषांक सन् १९५३ में अपने लेख में लिखा था—

"आज इन केवल यज्ञमात्र परक अर्थ करने वाले सायणाचार्य आदि भाष्यकारों के भाष्य पढ़ने वालों को वेद के प्रति कितनी अनास्था होती जाती है इसके दो उदाहरण मुझे ज्ञात हैं। स्व० बा० शिवप्रसाद जी गुप्त (काशी) वेद पर बड़ी आस्था रखते थे। उन्होंने बड़ी श्रद्धा के साथ सायणाचार्य का किसी विद्वान् से आदि से अन्त तक पाठ कराया और स्वयं भी वहां नित्यनियम से बैठ कर सुनते रहे। उसी अवसर पर एक रोज मैं वहां गया तो उन्होंने हाथ जोड़ कर हंसते हुए मुझे कहा कि शास्त्री जी महाराज, पहले ही अच्छा था कि मैंने वेद का अर्थ नहीं सुना था। जब से मैंने सायणाचार्य का वेदार्थ सुना तो मेरी वेद पर अनास्था हो गई।" (वेदवाणी नव० सन् १९५३ ई०)

दूसरा उदाहरण महामहोपाध्याय पं० अन्नदाचरण जी तर्कचूड़ामणि का देकर उन्होंने लिखा "इसी कारण मैंने कहा है कि सायणाचार्य ने जहां वेदार्थ करके जगत् का उपकार किया है वहां उन्होंने केवल यज्ञमात्र परक अर्थ करके बड़ा भारी अपकार भी किया है।"

 (वेदवाणी नव० सन् १९५३ ई०)

सुप्रसिद्ध मनीषी योगी अरविन्द जी द्वारा सायणभाष्य की आलोचना— जगद्विख्यात मनीषी श्री अरविन्द जी ने सायणाचार्य के वेदभाष्य के विषय में लिखा था कि—

It ever there was a monument of arbitrarily erudite ingenuity of great learning divorced as great learning too often is, from sound judgement and sure taste and a faithful critical and comparative observation, from direct seeing an often even from plainest common sense or of a constant fitting to the text into the procrestian bed of preconceived

theory, it is surely this commentary, otherwise so imposing, so useful as first crude material, so erudite and laborious, left to us by the Acharya Sayana."

(Dayananda and Veda by Shri Aurabindo.)

सारांश यह है कि यदि कोई भाष्य है जिसमें महान् और स्वच्छन्द पांडित्यपूर्ण दशा का, न्याय्य निर्णय, सुनिश्चित रुचि, निर्दोष एवं तुलनात्मक निरीक्षण और साधारण एवं सहज बुद्धि की उपेक्षा कर पूर्वकल्पित सिद्धान्त से मूल ग्रन्थ का अर्थ तोड़ मरोड़ कर दिया गया है तो वह आचार्य सायण का वेदभाष्य है जो बिशाल होने के कारण प्रभावोत्पादक पांडित्य और परिश्रम सूचक और प्रारम्भिक साधन के रूप में इतना उपयोगी है।

दक्षिण भारत के महान् विद्वान् और योगी, वेद विषय में योगी श्री अरविन्द जी के भी मार्ग दर्शक श्री कपाली शास्त्री जी ने सायणाचार्य के वेदभाष्य की समालोचना करते हुये लिखा था।

"सायणीयं भाष्यं न चेदभविष्यत् अन्धकारबन्धुरो
दुःखगाह एवाभविष्यद् वेदशब्दसमुदायोऽस्माकम्।

तस्मात् प्रशंसनीयः कृतज्ञतया प्रयोजनगरिमा परन्तु याज्ञिकपारम्यं प्रदर्शयितुंप्रवृत्तेऽस्मिन् व्याख्याने छिद्रबहुलः स्वप्रयोजनस्यापि अनावश्यकः अनृजुः पन्थः स्फुटास्फुट रहस्यार्थ मन्त्रेषु कर्मपरतया व्याख्यानाय अवलम्बितः। अथ किं फलितम्। वेदपावनतायाः प्रतिष्ठैव निर्मूलिता अध्यात्मतत्व देवतास्वरूप साक्षात्कार आदि बहुरहस्य निक्षेपो वेदराशिरिति विश्व जनीन विश्वासस्य निराधारता।"

(श्री कपालिशास्त्रिकृतायाम् ऋग्वेदभाष्यभूमिकायाम् पृ० ४६)

भावार्थ यह कि यदि सायणभाष्य न होता तो वेद शब्द समुदाय को समझना हमारे लिये अंधेरे में भटकने के समान हो जाता और वेद के गुप्त अर्थ की परीक्षा भी सम्भव न होती। इसलिये सायणाचार्य के परिश्रमादि की कृतज्ञपूर्वक हम प्रशंसा करते हैं किन्तु उसको सब मंत्रों का केवल यज्ञपरक अर्थ सिद्ध करने के लिये सर्वथा अनावश्यक और

असरल (कुटिल) मार्ग का अवलम्बन करना पड़ा। इसका फल क्या हुआ यही कि वेद की पवित्रता की प्रतिष्ठा नष्ट हो गई। वेद अध्यात्म-तत्वों और रहस्यों का भंडार है। इस सार्वजनिक विश्वास की निराधारता सिद्ध हुई।

एक अन्य स्थान पर कपालीशास्त्री जी ने लिखा—"किं वा न भवेन्निरंकुशकर्मपरताप्रतिपादनोत्साहसमीरिते सायणीयभाष्ये।" अर्थात् निरंकुश रूप से कर्मपरता प्रतिपादन के उत्साह से प्रेरित सायणीय भाष्य में क्या नहीं हो सकता ? वेदों की अपौरुषेयता और नित्यता के पक्ष का अपनी ऋग्वेदादि भाष्यभूमिका में प्रबलरूप से प्रतिपादन कर के भी वेदभाष्य में राजर्षियों के वृत्तान्त, युद्ध, कथा, शाप, अभिशाप इत्यादि रूप से सायणाचार्य के व्याख्यान की कठोर आलोचना करते हुये महाविद्वान् मान्य शास्त्री जी ने लिखा—

"अत्र वेदापौरुषेयत्वपक्षोच्छेदः कृतः।"

इसमें वेदों की अपौरुषेयता के पक्ष का उच्छेद कर दिया।

ऋषि दयानन्द के वेदभाष्य पर श्री अरविन्द

योगी श्री अरविन्द जी ने जहां श्री सायणाचार्य के भाष्य की उपर्युक्त रूप में समालोचना की वहां ऋषि दयानन्द के वेदभाष्य के विषय में लिखा कि—

"In the matter of Vedic interpretation, I am convinced that whatever may be the final and complete interpretation, Dayananda will be honoured as the first discoverer of the right clues Amidst the chaos and obscurity of old ignorance and age long misunderstanding, his was the eye of direct vision that pierced to the truth and fastened on that which was essential He has found the key of doors that time had closed and rent asunder the seals of the imprisoned fountains" —Dayananda and Veda by Yogi Shri Aurobindo

अतः अब मेरा वेदों की व्याख्या के विषय में यह दृढ़ विश्वास बन गया है कि वेदों का सम्पूर्ण और अन्तिम भाष्य जो कोई भी हो दयानन्द का ठीक भाष्य शैली के प्रथम उद्धारक के रूप में सदा सम्मान किया जायेगा। समय ने जिनको बन्द कर दिया था ऐसे द्वारों की चाबी को उन्होंने फिर से पा लिया। और बन्द स्रोत की मुहर को तोड़ डाला।

अतः विश्ववेद परिषद् के अध्यक्ष के रूप में मेरा सानुरोध निवेदन है कि आकाशवाणी से सायणाचार्य के भाष्य को प्रसारित करने के विचार का सर्वथा परित्याग करके जो अत्यंत हानिकारक तथा वेद पर अश्रद्धा उत्पन्न करने वाला होगा आप महर्षि दयानन्द सरस्वती के वेद-भाष्य के आधार पर जो प्राचीन आर्ष साहित्य पर अवलम्बित है वेद की व्याख्या को प्रसारित करने की व्यवस्था करें जिससे सब शिक्षित लोग लाभान्वित हो सकें और वेदों की सार्वभौम युक्तियुक्त शिक्षाओं को समझ सकें।

सनातन धर्माभिमानी विद्वानों से निवेदन

अपने सनातनधर्माभिमानी विद्वानों से मेरा निवेदन है कि वे इस विज्ञप्ति को शान्तभाव से निष्पक्षपात होकर आद्योपान्त पढ़ें और यदि इसमें दिये श्री सायणाचार्य के वेदभाष्य के उद्धरणों को देखकर उन्हें विश्वास हो जाये कि ऐसे प्राचीन आर्ष पद्धति तथा परस्पर विरुद्ध वचनों को कहने वाले, देवराज इन्द्र को १५, २० बैलों और ३०० भैंसों का मांस भक्षक बताने वाले सायणाचार्य आप्त और प्रामाणिक वेदभाष्यकार नही माने जा सकते तो उनको इस बात की स्पष्ट घोषणा कर देनी चाहिये अन्यथा यह माना जायगा कि वे भी इन बातों को यथार्थ मानते हैं। सब सत्य सनातनधर्म और गोरक्षा प्रेमी विद्वानों को निर्भयता से ऐसी घोषणा कर देनी चाहिये अन्यथा वे भी पाप के भागी होंगे।

सायणभाष्य में ऋषियों को कलंकित करने वाली कथा का एक नमूना— ऋ. १. १०५ के भाष्य की भूमिका में सायणाचार्य ने निम्न कथा को लिखा है जो ऋषियों के जीवन को कलंकित करने वाली है।

"एकतो द्वितस्त्रित इति पुरा त्रय ऋषयो बभूवुः। ते कदाचिन्मरुभूमावरण्ये वर्तमानाः पिपासयासन्तप्तगात्रा सन्तः जलपानाय कूपं प्राविशन्। तत्रत्रिताख्य एकोऽजलपानाय कूपं प्राविशत्। स्वयंपीत्वेतरयोः कूपादुदकमुद्धृत्य प्रादात्। तौ तदुदकं पीत्वा त्रितं कूपे पातयित्वा तदीयं धनं सर्वमपहृत्य कूपं च रथचक्रेण पिधाय प्रास्थिषाताम्। ततः कूपे पतितः स त्रितः कूपादुत्तरीतुमशक्नुवन् सर्वे देवा मामुद्धरन्त्विति मनसा सस्मार। ततस्तेषां स्तावकमिदं सूक्तं ददर्श। तत्र रात्रौ कूपस्यान्तचन्द्रमसोरश्मीन् पश्यन् परिदेवयते।" (सायणभाष्ये)।

अर्थात् एकत, द्वित, त्रित तीन ऋषि थे। वे कभी मरुभूमि के अरण्य में प्यास से व्याकुल हो कर जल पीने के लिये कूप के समीप गये। उनमें से त्रित कुए के पास गया। स्वयं पानी पीकर इसने दोनों के लिये भी कूपसे पानी निकाल कर उन्हें दिया उन दोनों ने पानी पीकर त्रित को कुए में गिरा दिया और उसके सारे धन को छीनकर उन्होंने कूप को रथचक्र से ढककर प्रस्थान कर दिया। तब त्रित ने कूप से बाहर निकलने में असमर्थ हो कर उद्धार के लिये देवों का मन से स्मरण किया। इस सूक्त में इसका प्रतिपादन है। ऋषि लोगों को ऐसा कृतघ्न और लोभी बताने वाली कथा को लिखते भी सायणाचार्य को लज्जा न आई यह कितने आश्चर्य की बात है। जिन ऋषियोंका लक्षण ही उपनिषदोंमें यह लिखा है कि— "संप्राप्यैनमृषयो ज्ञानतृप्ताः, कृतात्मानो वीतरागाः प्रशान्ताः। ते सर्वगं सर्वतः प्राप्यधीराः, युक्तात्मानः सर्वमेवाविशन्ति मुण्डकोपनिषत्" अर्थात् इस परमात्मा को प्राप्त करके ऋषि लोग ज्ञान से तृप्त हो जाते हैं। वे सर्वव्यापक परमात्मा को चारों ओर प्राप्त करके धैर्यसम्पन्न और ध्यानी परमेश्वर से युक्त आत्मा वाले उस अन्दर प्रवेश करते हैं।

ऐसे ऋषियों पर इस प्रकार का कलंक लगाना कि उन्होंने एक उपकार करने वाले भाई को कुए में फेंक दिया और उसके धन का अपहरण करके कूप को रथचक्र से ढक दिया कितना अक्षन्तव्य अपराध है। विचारशील विद्वान् स्वयं विचार करें और सायणाचार्य, उवट, महीधर आदि के भाष्यों की अप्रामाणिकता को घोषित करें। जो विद्वान् श्री सायणाचार्य, उवट, महीधर आदि के वेदभाष्यों की भयंकर भूलों और महर्षि दयानन्द के वेदभाष्यो की विशेषताओं को विशेष रूप से जानना चाहते हैं उन्हें इस निवेदक की "महर्षि दयानन्द के वेदभाष्यों की विशेषताएं" इस पुस्तक को दयानन्द संस्थान १५८७ हरध्यानसिंह मार्ग करौल बाग नई दिल्ली ५ से मंगवा कर अवश्य पढ़ना चाहिये।

निवेदक—धर्मानन्द सरस्वती विद्यामार्तण्ड
(अध्यक्ष-विश्ववेद परिषद्)
आनन्द कुटीर, ज्वालापुर।

मुद्रित—गोल्डन टैम्पल प्रैस, पहाड़ी बाजार, कनखल।

महर्षि दयानन्द के वेदभाष्य की पांच प्रमुख विशेषतायें

महर्षि दयानन्द के वेदभाष्य की निम्न प्रमुख विशेषतायें जो अत्यन्त महत्वपूर्ण हैं और जो सम्पूर्णतया अन्य किसी के मेदभाष्य में नहीं पाई जातीं।

(१) वेद विषयक इस सर्वशास्त्र सम्मत सिद्धान्त का कि वे नित्य ईश्वरीयज्ञानस्वरूप तथा सार्वभौम, सर्वजनोपयोगी शिक्षाओं का भण्डार हैं महर्षि के भाष्य से ही पूर्णतया समर्थन होता है।

(२) 'बुद्धिपूर्वा वाक्यकृतिर्वेदे' इस वैशेषिक शास्त्र के कथनानुसार महर्षि के भाष्य में बुद्धिसंगत व्याख्या दिखाई देती है तथा अग्नि, इन्द्र, मित्र, वरुण आदि शब्दों की विशेषणादि को ध्यान में रखते हुये आध्यात्मिक, आधिभौतिक तथा आधिदैविक दृष्टि से अनेकार्थ परक व्याख्या पाई जाती है।

(३) प्रत्येक मन्त्र भाष्य के प्रारम्भ में विषय का संक्षेप मे निर्देश और आध्यात्मिक, आधिभौतिक और आधिदैविक अनेकार्थ सूचक पदार्थ देकर सर्वसाधारण के लाभार्थ भावार्थ का निर्देश यह क्रम महर्षि दयानन्द के भाष्य में ही पाया जाता है जिससे अपनी-अपनी योग्यता के अनुसार सब लाभ उठा सकें।

(४) अनेक मन्त्रों की पारमार्थिक और व्यावहारिक अथवा आध्यात्मिक, आधिभौतिक व्याख्या महर्षि के भाष्य में श्लेषालंकार का आश्रय लेकर पाई जाती है।

(५) वेदों में विविध विद्याओं का मूल पाया जाता है इस बात की पुष्टि महर्षि दयानन्द के भाष्य में जितनी उत्तमता से पाई जाती है उतनी अन्य भाष्यों से नहीं जिनमें अधिकतर यज्ञ परक ही व्याख्या की गई है अथवा कुछ थोड़े से भाष्यों में केवल आध्यात्मिक ॥

विश्ववेद परिषद् के विद्वान् सदस्यों से निवेदन

विश्ववेद परिषद् के सब विद्वान् सदस्यों से निवेदन है कि वे अपने को वैदिक धर्म का प्रचारक समझें और वैदिक सार्वभौम शिक्षाओं के प्रचार और वेदादि विषयक भ्रान्तियों के निवारण में यथाशक्ति तत्पर रहें। अपने सभी विद्वान् मित्रों को वे विश्ववेद परिषद् का सदस्य और धनीमानी वेद प्रेमी आर्य सज्जनों को संरक्षक, पोषक, संपोषक आदि बनाने का प्रयत्न करें जिस से उनके आर्थिक सहयोग से परिषद् को पुस्तक प्रकाशन, 'वेद ज्योति' नामक पत्रिका के शीघ्र संचालन तथा अन्य वेद प्रचार विषयक योजनाओं को क्रियात्मक रूप देने में सहायता मिल सके। वैदिक परीक्षाओं के लिये वे परीक्षार्थियों को तैयार करें और आर्यसमाज मन्दिरों में कम से कम १ घंटा प्रतिदिन शुद्ध वेदपाठ संध्या, हवन, स्वस्तिवाचन, शान्ति प्रकरण, सामान्य प्रकरणादि के मंत्रों के अर्थ सहित सिखाने की व्यवस्था करावें। आर्यसमाजों के अधिकारियों को इस वास्तविक वेदप्रचार के कार्य में पूर्ण सहयोग (जिसमें नैतिक और आर्थिक दोनों सहयोग सम्मिलित हैं) प्रदान करना अपना कर्तव्य समझना चाहिये। वेद गोष्ठियों और वेद सम्मेलनों का समय २ पर आयोजन करके वर्तमान दूषित वातावरण के स्थान पर शुद्ध वैदिक वातावरण को परिवारों और समाजों में सर्वत्र बनाने का सब विश्ववेद परिषद् के सदस्य विद्वान् विशेष रूप से प्रयत्न करते रहें।

— धर्मानन्द सरस्वती विद्यामार्तण्ड
(अध्यक्ष-विश्ववेद परिषद्)
आनन्द कुटीर, ज्वालापुर।